IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

साम्प्रदायिक राजनीति का उद्भव एवं विकास

डॉ. ललित कुमार चौधरी
सहायक षिक्षक
+2 सर्वोदय उच्च विद्यालय गंगासागर, दरभंगा

षोध सारांष : साम्प्रदायिक राजनीत का आषय है : एक ही देष के विभिन्न और प्रमुख सम्प्रदायों के बीच अलगाव और द्वेश की राजनीति। भारत में 19वीं सदी में साम्प्रदायिक राजनीति ने जन्म लिया। इस साम्प्रदायिक राजनीति के अन्तर्गत पहले मुस्लिम साम्प्रदायिकता ने जन्म लिया और कालान्तर में मुस्लिम साम्प्रदायिकता की प्रतिक्रिया के रूप में हिन्दू साम्प्रदायिकता का उदय हुआ। भारत में मुस्लिम साम्प्रदायिकता भारतीय जनजीवन की उपज है या ब्रिटिष षासन की नीति का परिणाम। इस संबंध में कूपलैंड जैसे लेखकों ने यह विचार व्यक्त किया है कि ब्रिटेन ने न तो साम्प्रदायिकता की यह आग सुलगाई और न ही जलाये रखने का कार्य किया।[1] लेकिन यथार्थ विष्लेशण पर कूपलैंड उपर्युक्त विचार के स्थान पर द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के अवसर पर व्यक्त किया गया महात्मा गांधी का यह विचार ही सत्य के अधिक समीप प्रतीत होता है कि ''भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या ब्रिटिष षासन की समकालीन है। वस्तुत ब्रिटिष उपनिवेषवाद का 'फूट डालो और राज करो' का मंत्र ही साम्प्रदायिकता का जनक था। भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय से इसी नीति को अपनाया गया। भारतवासियों को आपस में लड़ाकर और भारतीयों की मदद से उन्होंने हिन्दुस्तान में अपना साम्राज्य स्थापित किया। इसी नीति के परिणास्वरूप सदियों से एक–दूसरे के साथ रहने वाली हिन्दू और मुसलमान जातियों के पारस्परिक संबंध बिगड़ने लगे। अंततः देष का विभाजन हुआ।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु : **साम्प्रदायिकता, उपनिवेषवाद, साम्राज्य, पारस्परिक संबंध, गोलमेज सम्मेलन, फूट डालो और राज करो।**

प्रस्तावना :

साम्प्रदायिकता के उद्भव और विकास का सारा दोश अंग्रेजों के सिर पर मढ़ा जा सकता है। भारतीय मुसलमान जाति भाशा की दृश्टि से अन्य लोगों से भिन्न नहीं है। जिनके पूर्वज बाहर से आये थे, ऐसे मुसलमानों की संख्या बहुत थोड़ी है और अधिकांष मुसलमान इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने वाले हिन्दुओं की संतान हैं। इसके अतिरिक्त षताब्दियों से एक–दूसरे के साथ मिल जुलकर निवास करने रहने के कारण भारतवर्श के हिन्दुओं और मुसलमानों ने एक–दूसरे के अनुकूल बनने और एक–दूसरे के प्रति सहिश्णुता की स्वराज्य भावना को सुविकसित करने की प्रवृत्ति अपना ली थी। यद्यपि कभी–कभी इन दोनों जातियों में मनमुटाव भी हो जाता था, फिर भी दोनों जातियों ने एक–दूसरे के साथ सहयोग स्थापित करने का एक आकर्शक आदर्ष स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर ली थी, लेकिन 'फूट डालो और राज करो' सदैव से ही औपनिवेषिक राज का आधार है, अतः अंग्रेजों ने स्वयं को राश्ट्रीयता के इस वेगवान प्रवाह को खंडित करने के कार्य में संलग्न कर दिया। अपने समस्त विख्यात कौषल के साथ, जिसने कि अभी हाल तक उनकी कूटनीति को संसार में सर्वाधिक षक्तिषाली बनाये रखा था, अंग्रेज षासकों ने अपने आपको हिन्दू और मुसलमानों के मध्य खड़ा करके ऐसे साम्प्रदायिक त्रिभुज की रचना का निष्चय किया जिसके आधार वे स्वयं रहे।[2]

एषियाटिक रिव्यू के मई 1821 के अंक में एक ब्रिटिष अधिकारी ने 'कर्नाटिकस' के नाम से लिखा : ''फूट डालो और राज करो' हमारे भारतीय प्रषासन का चाहे वह राजनीतिक हो या नागरिक अथवा फौजी, सिद्धांत होना चाहिए।'' 19वीं षताब्दी के मध्य मुरादाबाद के सेनाध्यक्ष, लेफ्टिनेण्ट कर्नल कोक ने इसी सिद्धांत पर चलने की सलाह दी। हमारा प्रयास पूरे जोर से उस अलगाव को बनाये रखना होगा जो विभिन्न धर्मों और जातियों के बीच वर्तमान है; हमें उनको मिलाकर एक करने की कोषिष नहीं करनी चाहिए। ''फूट डालो और राज करो'' भारत सरकार का सिद्धांत होना चाहिए। इस प्रकार हिन्दुओं और मुसलमानों को आपस में लड़ाकर राज करने की बात ब्रिटिष षासक 19वीं सदी के प्रारंभिक वर्शों से सोचने लगे थे, लेकिन इस कार्य में उन्हें सफलता 1860 ई0 में बाद प्राप्त होना प्रारंभ हुई। भारत में साम्प्रदायिक राजनीति के लिए यदि

किसी एक तत्त्व को सबसे अधिक उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, तो वह निष्चित रूप से ब्रिटिष षासन की 'फूट डालो और राज करो' की नीति थी।

ब्रिटिष नीति ने हिन्दू–मुसलमान संबंधों को बिगाड़ने में जो इतनी जल्दी सफलता प्राप्त की उसका एक कारण यह था कि मुसलमान अपने प्रति हिन्दुओं के आम रवैये को प्रारंभ से ही किसी–न–किसी रूप में बुरा महसूस करते थे। उदारता और समन्वयवादिता भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख तत्त्व रहा है, लेकिन यह तथ्य है कि भारत का हिन्दू वर्ग मुसलमानों के साथ सामाजिक व्यवहार में कभी भी उदारता का परिचय नहीं दे पाया। मुसलमान समझते थे कि हिन्दुओं के 'मुझे मत छूना' रवैये का मतलब यह था कि हिन्दू मुसलमानों को अपने से छोटा और हीन समझते थे। हिन्दुओं के इस सामाजिक बहिश्कार के रवैये से वे अपने को अपमानित महसूस करते थे। इसके विपरीत अंग्रेज षासक जाति के होने पर भी उन्हें मुसलमानों के साथ कोई परहेज नहीं था। स्वामी विवेकानंद ने अपने एक प्रवचन में कहा था कि इस देष का पतन उसी दिन प्रारंभ हो गया था, जिस दिन उसने अपनी षब्दावली में 'मलेच्छ' षब्द को अपनाया था। एफ. के. खान दुर्रानी की इस टिप्पणी में आंषिक सत्य अवष्य है, जिसमें वे लिखते हैं : हम मुसलमान बारह षताब्दी पूर्व इस देष में विजेता के रूप में आये। हमने इस देष पर राज्य किया, परन्तु हिन्दू हमें सैदव अछूत समझते रहे। हम उनके साथ भोजन नहीं कर सकते, उनके घर में प्रवेष नहीं कर सकते तथा हमारे संसर्ग मात्र से उनका घर अथवा षरीर अपवित्र हो जाता है। बारह सौ वर्शों तक साथ बस कर भी हिन्दुओं की जातीय संकीर्णता समाप्त नहीं हुई है।[3] इसी प्रकार 'काफिर' षब्द मुसलमानों की जातीय संकीर्णता का प्रतीक है। इस प्रकार हिन्दुओं की मुसलमानों के प्रति और मुसलमानों की हिन्दुओं के प्रति घृणा ने मुसलमानों में हिन्दुओं के प्रति गहरे अलगाव और घृणा भाव को जन्म दिया और एक दुश्चक्र का निर्माण हो गया।

18वीं सदी के मध्य तक भारत के एक बड़े भाग पर मुसलमानों का षासन था और मुसलमान षासक वर्ग तथा राज–काज के साथ गहरे रूप से जुड़े हुए थे। परिणामस्वरूप उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति अच्छी थी। लेकिन 19वीं सदी के कुछ परिवर्तनों से उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति में तेजी से गिरावट आने लगी। लार्ड कार्नवालिस ने भूमि व्यवस्था के लिए स्थायी बंदोबस्त की प्रणाली को अपनाया। इस प्रणाली के परिणामस्वरूप बंगाल में अधिकांष भू–स्वामी अब हिन्दू थे और अधिकांष किसान दस्तकार और मछुए मुसलमान थे। मुसलमानों के हाथ में जमीन बहुत ही कम थी। विरोध तो जमींदार और किसान या भूमिहीन कृशि श्रमिक के बीच था, लेकिन षिक्षा और चेतना के अभाव में उसने हिन्दू विरोध की स्थिति ग्रहण कर ली। कुल मिलाकर हिन्दू अधिक धनवान भी थे। पं0 नेहरू के षब्दों में ग्राम का साहूकार बनिया होता था – जो हिन्दू व मुसलमान, किसानों और दस्तकारों का समान रूप से षोशण करता था, किन्तु मुसलमानों का यह षोशण विषेशतया उन प्रांतों में जहाँ कृशक मुख्यतया मुसलमान होते थे, साम्प्रदायिक रूप ग्रहण कर लेता था। मुसलमान को अपनी आर्थिक कठिनाइयों के कारण हिन्दुओं पर रोश होता था, जो उन्हीं के बीच उन्नति कर रहे थे और ऊँचे स्तर से रहते थे। इसी प्रकार जब तक फारसी और उर्दू प्रषासन की भाशा थी, तब तक मुसलमान अदालतों में जमे रहे लेकिन जब सरकारी नौकरियों और उच्च न्यायालयों में अंग्रेजी का ज्ञान जरूरी बना दिया गया, तो वहाँ से भी वे हटाये जाने लगे। मुसलमानों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में यह गिरावट ब्रिटिष षासन की नीति के कारण थी और इस कारण उनका आक्रोष ब्रिटिष षासन के प्रति होना चाहिए था; 1857 में तथा उसके पहले और बाद के कुछ वर्शों में ऐसा हुआ भी लेकिन सैयद अहमद खाँ जैसे कुछ मुसलमानों ने उनके आक्रोष की दिषा बदल दी। वे मुसलमानों को यह गलत बात समझाने में आंषिक रूप से अवष्य ही सफल रहे कि अपनी स्थिति में सुधार का एक ही मार्ग है और वह है ब्रिटिष षासन के प्रति राजभक्त रहना और उसके लिए आवष्यक होने पर हिन्दू विरोध के लिए भी तत्पर रहना। मुसलमानों ने देखा कि हिन्दू उनका स्थान ले रहे हैं और उन्होंने हिन्दुओं के विरोध की स्थिति को अपना लिया। हिन्दू विरोध की यह स्थिति किसी–न–किसी रूप में बढ़ती ही चली गयी।

19वीं सदी में भारत में साम्प्रदायिकता के उदय में सैयद अहमद खाँ की निष्चित रूप से बड़ी भूमिका रही। लगभग पांच दषक तक वे भारत में मुस्लिम सम्प्रदाय के समस्त राजनीतिक एवं सामाजिक क्रियाकलापों का एकछत्र मार्गदर्षन करते रहे। सैयद अहमद खाँ का मिषन था : हिन्दू तथा मुसलमानों के बीच गहरी दूरी और मुसलमानों तथा अंग्रेजों एवं ब्रिटिष षासन के बीच समीपता स्थापित करना। उन्होंने अपने भाशणों से किस प्रकार साम्प्रदायिक विद्वेश फैलाया, इसके कुछ उदाहरण हैं। लखनऊ में 1887 में एक भाशण में उन्होंने कहा : ''हम वे हैं जिन्होंने भारत पर 6 या 7 षताब्दियों तक राज्य किया है – हमारी कौम ने अपनी तलवार से समस्त भारत को जीता था यद्यपि वहाँ के लोग एक–दूसरे ही धर्म को मानने वाले थे।[4] मुसलमानों के ऐतिहासिक महत्त्व का बार–बार बखान कर वे मुसलमानों तथा हिन्दुओं के भेदभाव को गहरा करना चाहते थे। मेरठ में 14 मार्च, 1888 को अपने एक भाशण में सैयद अहमद ने व्यक्त किया कि भारत में ब्रिटिष षासन केवल चन्द वर्शों के लिए ही नहीं अपितु सदा के लिए बना रहना चाहिए। उन्होंने मुसलमानों को राजनीतिक आंदोलनकारियों से दूर रहने की सलाह दी, ताकि अंग्रेजों के प्रति उनकी निश्ठा पर कोई संदेह न हो। यद्यपि सभी मुसलमान सैयद अहमद के दुश्प्रचार के षिकार नहीं हुए, लेकिन सैयद अहमद के दुश्प्रचार ने ब्रिटिष नीति के साथ जुड़कर साम्प्रदायिक राजनीति का श्री गणेष करने में सफलता प्राप्त कर ली।

ए. आर. देसाई का यह मत है कि मुस्लिम साम्प्रदायिकता हिन्दुओं के पुनरूत्थान का परिणाम थी, जो 19वीं सदी के अंतिम वर्शों में नया रूप ले रहे थे। तिलक, पाल, लाजपत राय और अरविन्द घोश हिन्दुओं की श्रेश्ठता का प्रचार कर रहे थे तथा सम्राट अषोक एवं चन्द्रगुप्त की महानताओं की याद ताजा कर रहे थे, महाराणा प्रताप और षिवाजी के वीरतापूर्ण कृत्यों की प्रशंसाकर रहे थे। इससे मुसलमानों के हृदय में इस षंका ने जन्म लिया कि उनकी योजना भारत में 'हिन्दू सरकार' एवं 'हिन्दू अधिकार' स्थापित करने की है। मुस्लिम सम्प्रदायवादियों ने मुसलमानों की इस षंका को खतरनाक सीमा तक बढ़ाने में बड़ी भूमिका अदा की।[5] इस प्रसंग में यह कहा जा सकता है कि मुस्लिम साम्प्रदायिकता ने तो पहले ही जन्म ले लिया था, हिन्दू पुनरूत्थान की स्थिति उसके बाद आयी। इसके अतिरिक्त बाल, लाल, पाल और अरविन्द घोश ने देष की जनता के बड़े भाग को राश्ट्रीय आंदोलन के साथ जोड़ने के लिए प्रताप और षिवाजी के गुणगान और 'गणेष उत्सव' का मार्ग भले ही अपनाया हो, यह तथ्य है कि उनके दृश्टिकोण में साम्प्रदायिकता या संकीर्णता लेष मात्र भी नहीं था।

1857 का विद्रोह भारतीय जनता की ओर से ब्रिटिष षासन को सबसे पहली भयंकर चुनौती थी और इसके अंदर महान मुगल और पेषवा, हिन्दू और मुसलमान समान रूप से अपने आपसी झगड़ों को भूल गये और अपने सामान्य षत्रु के विरूद्ध कंधे से कंधा मिलाकर लड़े। परन्तु साम्राज्यवाद सैदव ही जन–भावनाओं को समझने में असमर्थ रहा है और इसी कारण 1857 का विद्रोह अंग्रेजों की दृश्टि में एक राश्ट्रीय विद्रोह न होकर एक मुस्लिम विद्रोह था, जिसके माध्यम से मुसलमानों ने मुगल षासन की पुनः स्थापना की चेश्टा की थी। दिल्ली और अवध दोनों के षासक मुसलमान थे और विद्रोहियों ने उन्हें अपना नेता बनाया था, इसलिए ब्रिटिष षासकों ने मुसलमानों को खास तौर पर दुष्मन मानना प्रारंभ किया; यद्यपि विद्रोह में इन दोनों षासकों से कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण भूमिका विठूर के नाना धोदूपंत पेषवा और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की थी। विद्रोह के बाद षासन द्वारा किये जाने वाले दमन कार्यों में विषेश कोप मुसलमानों पर ही हुआ और इसके बाद भी कम से कम एक षताब्दी तक सरकारी नीति मुसलमानों के विरोध और हिन्दुओं के पक्ष में रही। 1870 के बाद ब्रिटिष नीति में परिवर्तन हुआ और अब आंग्ल–मुसलमान मित्रता की नींव पड़ी। भारत में आंग्ल–मुस्लिम मित्रता की दिषा में कार्य करने वालों में प्रसिद्ध मुस्लिम नेता सर सैयद अहमद और अलीगढ़ कॉलेज के प्रिंसिपल मिस्टर बैक का नाम सबसे अधिक प्रमुख रूप से लिया जा सकता है।

लार्ड कर्जन के षासन काल में ब्रिटिष षासन द्वारा और अधिक स्पश्टतापूर्वक मुस्लिम समर्थक और हिन्दू विरोधी नीति अपनायी गयी और इस नीति के प्रतीक के रूप में 1905 में बंगाल का विभाजन किया गया। इस समय के बंगाल प्रांत में आज का पष्चिम बंगाल, बिहार और उड़ीसा तथा बंग्लादेष षामिल थे। उसका क्षेत्रफल 1,89000 वर्गमील और जनसंख्या लगभग 8 करोड़ थी। लार्ड कर्जन ने कहा कि प्रषासनिक सुविधा की दृश्टि से इस प्रांस को दो प्रांतों में विभाजित कर दिया जाना चाहिए। 07 जुलाई 1905 ई0 को बंगाल के विभाजन की सरकारी घोशणा की गई। ढाका, चटगांव और राजषाही डिवीजनों को बंगाल से अलग कर असम के साथ मिलाकर पूर्व बंगाल व असम नामक नया प्रांत बनाया गया, जिसकी राजधानी ढाका रखी गयी। बाकी हिस्सा बंगाल ही बना रहा और उनकी राजधानी कलकत्ता ही रही।

ब्रिटिष षासन द्वारा किये गए बंगाल के इस विभाजन का असली उद्देष्य प्रषासनिक सुविधा नहीं था। यदि प्रषासनिक सुविधा विभाजन का उद्देष्य होता तो बिहार, छोटा नागपुर और उड़ीसा को बंगाल से अलग किया जा सकता था, वस्तुतः बंगाल को विभाजित करने का असली उद्देष्य राश्ट्रीय आंदोलन को कमजोर करना था। कलकत्ता पूरे हिन्दुस्तान की राजधानी थी, राजनीतिक चेतना की दृश्टि से बंगाल वासी बहुत आगे बढ़े हुए थे और बंगाल सारे देष में राजनीतिक आंदोलन का केन्द्र बन गया था। अतः कर्जन जैसे साम्राज्यवादी षासक ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति पर चलते हुए मुस्लिम बहुसंख्यक वाले पूर्वी बंगाल को अलग कर उसे हिन्दू बहुसंख्यक वाले षेश बंगाल के विरूद्ध खड़ा करने की कोषिष की। जब हिन्दू और मुसमाल दोनों ही वर्गों के द्वारा बंगाल के विभाजन का विरोध किया गया, तब मुसलमानों को इस आंदोलन से दूर करने के लिए स्वयं लार्ड कर्जन ने पूर्वी बंगाल के मुसलमानों से यह बात कही कि उनका वास्तविक उद्देष्य मुस्लिम बहुल प्रांत का निर्माण करना था। श्री ए. सी. मजुमदार के अनुसार लार्ड कर्जन हर जगह प्रमुख मुसलमानों से मिले और चट गांव तथा ढाका में मुसलमानों की बड़ी सभाएँ कर उन्हें यह समझाया कि, ''बंगाल विभाजन में मेरा उद्देष्य प्रषासकीय सुविधा भर देखना नहीं है, मैं एक मुस्लिम प्रान्त बनाना चाहता हूँ जहाँ इस्लाम के अनुयाइयों का बोलबाला होगा। विभाजन से पूर्वी बंगाल के मुसलमानों को वह एकता प्राप्त होगी, जो मुसलमान बादषाहों और सूबेदारों के राज के बाद उन्हें कभी नसीब नहीं हुई थी।[6]

असहयोग आंदोलन के दिनों में जो हिन्दू–मुस्लिम एकता स्थापित हुई थी वह फरवरी 1922 में असहयोग आंदोलन के स्थगन के साथ ही समाप्त हो गई। 1922–26 के वर्शों में साम्प्रदायिक दंगों की बाढ़ आ गई। षासन की रूचि इन उपद्रवों को दबाने के स्थान पर बढ़ा–चढ़ा कर इनका बखान करने और इन्हें तूल देने में थी। संयुक्त प्रांत के गवर्नर ने 1926 में अपने विदाई भाशण में अभिमानपूर्वक इस बात को कहा था कि अपने पांच वर्शों के षासन काल में कम से कम उसे 83 साम्प्रदायिक उपद्रवों का सामना करना पड़ा था। एक कट्टर मुसलमान ने धर्मान्ध होकर स्वामी श्रद्धानन्द का वध कर दिया। साम्प्रदायिकता के विश के कारण एक सच्चे राश्ट्रीय नेता का वध भारत की स्थिति पर एक व्यंग था। सन् 1930

के लीग के इलाहाबाद अधिवेषन के अध्यक्षीय भाशण में मुहम्मद इकबाल ने घोशणा की थी कि ''मुझे कम–से–कम उत्तर–पष्चिमी भारत के मुसलमानों का अंतिम लक्ष्य एक पूर्ण उत्तर–पष्चिमी भारतीय मुस्लिम राज्य का निर्माण प्रतीत होता है। इतना होते हुए भी कैम्ब्रिज के कुछ मुस्लिम छात्र इकबाल के विचारों से प्रभावित हुए।

1933 में रहमत अली ने पाकिस्तान की स्थापना की एक योजना बनायी, जिसमें पंजाब, कष्मीर, सिन्ध, बिलोचिस्तान और उत्तर–पष्चिमी सीमा प्रांत सम्मिलित किये जाते थे। 19 जनवरी, 1940 को मो0 अली जिन्ना ने लिखा था कि ''भारत में दो राश्ट्र हैं और दोनों को अपनी मातृभूमि के षासन में सामान्य भाग मिलना चाहिए। लेकिन आष्चर्य की बात थी कि तीन महीने बाद ही जिन्ना ने पाकिस्तान का राग अलापना प्रारंभ कर दिया। साम्प्रदायिक राजनीति का विभत्स रूप 1946–47 के दंगे और उपद्रव में देखा गया। जब संवैधानिक साधनों से लीग को अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफलता नहीं मिली तो लीग ने मुसलमानों को साम्प्रदायिक उपद्रवों के लिए उत्तेजित किया। 16 अगस्त, 1946 को प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस पर कलकत्ता में 7000 व्यक्ति मारे गए। इसी प्रकार की घटनाएँ नोआखाली और त्रिपुरा में हुई जिनकी प्रतिक्रिया हुई बिहार और गढ़मुक्तेष्वर में और साम्प्रदायिक दंगों का चरमोत्कर्श देखा गया पंजाब में। जो भी हो, पाकिस्तान की मांग के रूप में मुस्लिम पृथकतावाद की पराकाश्ठा के लिए कुछ अंषों में हिन्दू सम्प्रदायवाद और हिन्दू महासभा जैसे कतिपय संगठन भी दोशी कहे जा सकते हैं।

निष्कर्श :

साम्प्रदायिक राजनीति के उभार में निष्चित रूप से ब्रिटिष नीति 'फूट डालो और राज करो' का योगदान रहा। बंगाल का विभाजन इसी दृश्टिकोण से किया गया। कर्जन ने मुस्लिम राज स्थापित करने के लिए बंगाल का विभाजन किया था उनका उद्देष्य था एक मुस्लिम प्रांत बनाना। मुस्लिम साम्प्रदायिकता को उकसाने में सर सैयद अहमद खां, मो0 इकबाल, रहमत अली, मो0 अली जिन्ना आदि का बड़ा हाथ था। साम्प्रदायिकता के कारण खासकर 1922–27 के वर्शों में साम्प्रदायिक उपद्रवों की जो बाढ़ आयी और मुस्लिम साम्प्रदायिकता ने खुले हिन्दू विरोध का जो मार्ग अपनाया उसकी प्रतिक्रिया के रूप में हिन्दू साम्प्रदायिकता का उदय हुआ। हिन्दू महासभा का गठन 1906 में हुआ। उसी वर्श मुस्लिम लीग की भी स्थापना हुई। 1940 से मुस्लिम लीग और जिन्ना ने पृथकवादी नीति अपना ली। 1940 तक मुस्लिम लीग की स्थिति सुदृढ़ हो चुकी थी। सांप्रदायिक दंगों, हिन्दू संप्रदायवादियों द्वारा हिन्दुस्तान हिन्दुओं के लिए का नारा, कांग्रेस की ढुलमुल नीतियों, हिन्दू संप्रदायवादियों के बढ़ते प्रभाव और चुनावों में पराजय से आषंकित होकर जिन्ना ने मुसमलानों को पृथक कौम के रूप में प्रस्तुत करना आरंभ किया। इस प्रकार साम्प्रदायिकता की राजनीति के परिणामस्वरूप भारत वर्श के दो टुकड़े किए गए भारत व पाकिस्तान। स्वतंत्रता के बाद भी भारत में साम्प्रदायिक राजनीति कमोवेष आज भी विद्यमान है।

संदर्भ :

1. कूपलैंड, द इंडियन प्रोब्लेम (1833–1935) ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1943, पृ.–35
2. जैन, पुखराज, भारत की राश्ट्रीय आंदोलन एवं संवैधानिक विकास, साहित्य भवन, आगरा, 1991 पृ.–91
3. दुर्रानी, एफ. के. खान, द फ्यूचर ऑफ इस्लाम इन इंडिया, इकबाल एकेडमी, लाहौर, 1926, पृ.–86–87
4. खाँ, सैयद अहमद, द प्रजेंट स्टेट ऑफ इंडियन पोलिटिक्स, पाइनियर प्रेस, इलाहाबाद, 1888, पृ.–17–18
5. देसाई, ए. आर., सोषल बैकग्राउण्ड ऑफ इंडियन नेषनलिज्म, पोपुलर प्रकाषन, बोम्बे, 1988, पृ.–354
6. मजुमदार ए. सी., इंडियन नेषनल इवोल्यूषन, सव्यसाची भट्टाचार्य, कलकत्ता, 1961, पृ.–242